RNI No. UPHIN/2015/63486

खबर न्याय अन्याय की... ज़िद भ्रष्टाचार उजागर करने की...

Postal Reg. No. GPOLW/NP-117/2015-17

www.judgementaajtak.com

जजमेंट आजतक

वर्ष 5, पृष्ठ 12 | सम्पादकः अम्बिका प्रसाद, एडवोकेट | 2016, लखनऊ अंक-XXXI

अम्बिका प्रसाद, एडवोकेट

खरी खरी

असहिष्णुता का मुद्दा तो हनुमान जी की पूंछ की तरह बढ़ता ही जा रहा है यह कितनों को जलायेगा अभी कह पाना मुश्किल है। हालांकि इस पर बोलने बहस करने वाले 90 प्रतिशत लोग शब्द का सही उच्चरण तो कर नहीं पाते इसका मतलब जानना और अर्थ समझना तो बहुत दूर की बात है।

इस मुद्दे की शुरुआत उन तथाकथित बुद्धिजीवियों ने की जिनको अपनी विचारधारा, ऐशोआराम और कुर्सी तिसेहित होते दिखी जबकि जिस राजनैतिक विचार धारा का वे प्रतिनिधित्व करते हैं उसका इतिहास तो असहिष्णुता पर सबसे भयावह है। असहिष्णुता को अभिव्यक्ति की आजादी से जोड़ते हुए इसे धार्मिक उन्माद तक खींचा गया है।

सहिष्णुता का सीधा संम्बन्ध संवेदनशीलता से जुड़ा हुआ है लेकिन जो लोग इस पर मुखर हुए उनकी खाल तो गेड़ें से भी ज्यादा मोटी है जिस पर कोई असर नहीं होता। सामाजिक हित की आड़ में जो प्रकारान्तर में स्वाहित ही है राजनीतिक हित सांधना वैचारिक बेईमानी है। कभी—कभी यही वैचारिक बेईमानी सामाजिक विघटन का कारण बन जाती है और जब वैमनस्यता ऐसे लोगों द्वारा थोपी जाय जो किन्हीं कारणोवश सत्ता लॉलीपाप न मिलने से दुःखी हो तो समस्या और भयानक हो जाती है। हाल फिलहाल में असहिष्णुता का जो प्रहसन सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और फिल्मी मंच पर चल रहा है उसका सूत्रधार एक ऐसा स्वनामधन्य अधिकारी परिवर्तित साहित्कार है जिसने कांग्रेस राज में न सिर्फ नौकरशाही का भरपूर लुत्फ उठाया बल्कि भारत भवन जैसी संस्था को अय्याशी का अड्डा बनाकर बेड़ा गर्क कर खोखला कर दिया। ये जिस सम्मान/पुरस्कार कमैटी मे रहे कैश व काइंड लेकर ही अपने चाटुकारों चमचों को सम्मान पुरस्कार दिए या दिलवाये।

जहां तक असहिष्णुता को लेकर सम्मान/पुरस्कार वापसी की बात है तो यह निर्विवाद है कि इस देश में सम्मान/ पुरस्कार कुछ अपवादों को छोड़कर क्लब से लेकर देश के सर्वोच्च सम्मान (सेना छोड़कर) सिर्फ व सिर्फ चाटुकारों या लॉबीस्टों को ही अंधा बांटे रेवड़ी आपुहिं आपुहिं लेय की तर्ज पर मिलते हैं इसमें योग्ययता, क्षमता व गुणवत्ता का कोई आंकलन नहीं होता।

असहिष्णुता की इस बेजा बहस व तथाकथित हिन्दुत्ववादी नेताओं के गैर जिम्मेदाराना बयानों ने देश के बौद्धिक खोखलेपन को उजागर कर दिया है। असहिष्णुता के झण्डावरदारों इन बौद्धिक चाटुकारों को इतनी समझ नहीं है कि इस देश के लोग तो कायरता की हदतक सहिष्णु हैं यहां आजाद व भगत सिंह तो गिने चुने हैं जबकि गांधी भरे पड़े हैं जो एक लात खाने के बाद भी दस लात खाने को तैयार रहते हैं वरना इस देश की यह दुर्दशा न होती।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हमला करने (असहिष्णुता) पर तो कांग्रेसियों, वामपंथियों तथा इनके पिट्ठू बुद्धिजीवियों को बोलने का नैतिक साहस इसलिए भी नहीं करना चाहिए कि जब मद्रास सरकार बनाम रोमेश थापर केस में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के उस आदेश को रद्द कर दिया था जिससे मद्रास सरकार एक पत्रिका की बिक्री को अपने राज्य में रोकना चाहती थी तो तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरु 1951 में पहला संविधान संसोधन ले आये इतना ही नहीं उन्होंने एक नहीं तीन—तीन संशोधन लाकर अभिव्यक्ति की आजादी पर अंकुश लगा दिया।

असहिष्णुता (अभिव्यक्ति की आजादी पर अंकुश) वाले छदम बुद्धिजीवी जो सम्मान/पुरस्कार लौटाने से पहले, लौटाने के दौरान तथा लौटाने के बाद जिस तरह मीडिया में भौंकते हैं यदि अंकुश होता तो कूं कूं भी न करपाते भौंकना तो दूर की बात है। यह देश की छवि दुनिया में बिगाड़ने का प्रलाप मात्र है अप्रत्यक्ष रूप से यह देशद्रोह है इन पर देशद्रोही की कार्रवाई होनी चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा लोकायुक्त उत्तर प्रदेश की नियुक्ति

सरकार को अवमानना पुरस्कार

❍अम्बिका प्रसाद, एडवोकेट

सरकार जो कार्य मुख्य न्यायाधीश इलाहाबाद हाई कोर्ट से 20 महीने में नहीं करा सकी सुप्रीम कोर्ट ने 20 मिनट में किया।

हमारे देश में ऐसे संवैधानिक/ वैधानिक पदों जिन पर चयन, मनोनयन या नियुक्ति एकल या सामूहिक डिस्क्रीशन के आधार पर होता है सदैव ही विवादों के घेरे में रहती है क्योंकि ऐसे चयन, मनोनयन या नियुक्ति से जुड़े कम से कम राजनीतिक व्यक्ति योग्यता, क्षमता, इमानदारी से अधिक तरजीह उस पार्टी या नेता के प्रति उस व्यक्ति की निष्ठा को देते हैं और यह आंकलन करके कि उसने पद पर रहते उनके लिए क्या किया या पद पाने के बाद उनके लिए कितना काम करेगा। उत्तर प्रदेश लोकायुक्त का पद इसका ज्वलंत उदाहरण है। यहां के नये लोकायुक्त का मुद्दा तो सुरसा के मुंह की तरह बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान लोकायुक्त के कर्यकाल विस्तार से लेकर नये लोकायुक्त श्री नियुक्ति तक एक बात तो साफ हो गयी कि भ्रष्टाचार की जांच करने वाली यह संस्था अपने मूल मकशद में कामयाब हो न हो लेकिन विधायिका से लेकर कार्यपालिका व न्यायपालिका में व्याप्त घोर—भ्रष्टाचार को उजागर करने में अवश्य सफल हुई है। देश में भ्रष्टाचार की जांच करने वाली जितनी संस्थाएं हैं अधिकतर स्वयं आंकठ भ्रष्टाचार में डूबी हुई हैं।

नये लोकायुक्त के चयन में उत्तर प्रदेश के मुख्य न्यायाधीश डॉ0 डी0वाई0 चन्द्रचूड़ की यह धारणा कि भ्रष्टाचार की जांच करने वाली संस्था का प्रमुख ऐसे व्यक्ति को बनाया जाय जो पूरी तरह से न सही कम से कम रीजनेवली इमानदार व निष्पक्ष हो, (क्योंकि आज पूरी तरह से इमानदार योग्य व निष्पक्ष ढूंढना तो अंधेरे में सुई ढूंढ़ने की तरह है।) नेताओं के गले नहीं उतरी। संभवतः यही नियुक्ति में देरी का कारण भी है और इसी देरी के कारण उच्चतम न्यायालय ने नाराज होकर स्वयं ही आनन—फानन में नियुक्ति कर दी।

लोकायुक्त उत्तर प्रदेश की नियुक्ति का कानून संसोधन व उसकी कार्य प्रणाली उसकी नियुक्ति इस सरकार के सबसे विवादास्पद प्रकरणों में एक है। वर्तमान सरकार ने लोकायुक्त/उप लोकायुक्त का कार्यकाल 6 से बढ़ाकर 8 वर्ष करते हुए नये लोकायुक्त की नियुक्ति होने तक वर्तमान का कार्यकाल जारी रहने का प्रावधान किया जिसे मा0 उच्चतम न्यायालय ने भी वैध करार दिया है इसलिए उस पर टिप्पणी बहुत आवश्यक तो नही है परन्तु उसे वैधता प्रदान करते समय यदि उच्चतम न्यायालय कुछ तथ्यों पर गौर कर लेता तो आज इस छीछालेदर की नौबत ना आती। इस अधिनियम को संशोधित करने का गजट में जो उद्देश्य और कारण वर्तमान लोकायुक्त का कार्यकाल 2 वर्ष बढ़ाने के लिए दिया है उसके अनुसार इस

शेष पेज 2 पर जारी..

जहां तक इस केस में पूर्ण न्याय की बात है पूर्ण न्याय तो तब होता जब पहले कोर्ट आर्डर की अवहेलना करने वालों को कठोरतम दण्ड मिलता उसके बाद नियुक्ति होती।

कुछ सवाल?

- जिस याचिका में लोकायुक्त/ उप लोकायुक्त के 2 वर्ष के कार्यकाल विस्तार के अधिनियम संशोधन की वैधता को चुनौती दी गयी थी उसका निर्णय 2 वर्ष के विस्तारित समय समाप्त होने के 40 दिन बाद आया। मात्र बहस के लिए यदि यह मान लिया जाय कि यदि संशोधन अवैध घोषित हो जाता तो क्या? क्या यह न्याय का चालीसवां नहीं है?
- जिस अधिनियम संशोधन को वैध माना गया जब उसमें यह व्यवस्था है कि वर्तमान लोकायुक्त तक तक काम करते रहेंगे जबतक नये लोकायुक्त की नियुक्ति नहीं होती तो इतना बखेड़ा क्यों?
- जिस न्याय पद्धति में यह व्यवस्था हो कि किसी को बिना सुने उसके विरुद्ध टिप्पणी या आदेश नहीं किया जा सकता वहां देश की सर्वोच्च अदालत ने बिना मुख्य न्यायाधीश उत्तर प्रदेश का पक्ष जाने कैसे खुली अदालत में उनके विरुद्ध टिप्पणी कर दी?
- नियुक्ति से पहले अदालत ने यह जानने का प्रयास नहीं किया कि आखिर राज्य सरकार मुख्य न्यायाधीश की असहमति के बावजूद जाति विशेष के एक व्यक्ति विशेष का ही चयन क्यों करना चाहती है और उसके लिए इस हद तक जा सकती है कि अधिनियम में एक और संशोधन करके चयन में मुख्य न्यायाधीश की भूमिका ही समाप्त कर दी थी।

दो टूक

राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग कानून की वैधता की सुनवायी करने वाली 5 सदस्यीय पीठ ने कोलेजियम सिस्टम बहाल रखने के पक्ष में बात करते हुए कहा था कि किसी अन्य पद्धति (आयोग) द्वारा जजेज की नियुक्ति से न्यायिक स्वतंत्रता (Independence of Judiciary) प्रभावित होगी।

इस पर हमारा सुस्पष्ट मत है कि न्यायिक स्वतंत्रता को खतरा जजेज की किसी अन्य पद्धति से नियुक्ति से उतना नहीं है जितना जजेज की रिटायरमेण्ट के बाद स्वीटेबुल एडजस्मेण्ट से है। यदि न्यायिक स्वतंत्रता की रक्षा करनी है तो सुप्रीम कोर्ट को यह व्यवस्था दे देनी चाहिए कि किसी भी जज को सेवा निवृत्ति के बाद कोई पद नहीं मिलेगा। जहां सेवानिवृत्त जज के नियुक्ति की व्यवस्था है वहां ऐसे अधिवक्ताओं को नियुक्ति किया जाय जो जज बनने के लिए योग्यता रखते हैं।